शिक्षक-शिक्षा और प्रारंभिक साक्षरता की शिक्षा शास्त्रीय समझ

उषा शर्मा*

बच्चों में पठन संस्कृति का विकास करने की आवश्यकता को बहुत शिद्दत से महसूस किया जा रहा है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा– 2005 में भी इस बिंदु पर काफ़ी बल दिया गया है कि बच्चों के पढ़ना सीखने के बारे में विचार करने और उसके बारे में बेहतर समझ विकसित करने की ज़रूरत है ताकि बच्चों की पठन क्षमताओं का विकास किया जा सके। इस समझ का लाभ हर बच्चे को मिले, इसके लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षकों में यह समझ बने। इस संदर्भ में एम.एच.आर.डी. निरंतर प्रयासरत् है कि सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में इस दिशा में कार्य किया जाए। एन.सी.ई.आर.टी. का प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम पिछले सात-आठ सालों से इस दिशा में पूर्ण गंभीरता से कार्य कर रहा है कि सेवारत् शिक्षकों और सेवा-पूर्व शिक्षकों में पढ़ने-लिखने की प्रक्रियाओं के बारे में स्पष्टता विकसित हो सके। राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के शिक्षा-अधिकारियों, शिक्षक-प्रशिक्षकों और शिक्षकों को कार्य करते हुए यह ज्ञात हुआ कि अभी इस क्षेत्र में न तो संवाद की स्थिति है और न ही समझ की। प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम यानी शुरुआती पढ़ना-लिखना स्वयं में एक उभरता क्षेत्र है जिसकी शिक्षा शास्त्रीय विषय-वस्तु और उससे जुड़े विभिन्न पहुलओं को शिक्षक-शिक्षा संबंधी पाठ्यचर्या में उचित स्थान और पर्याप्त समय देने की आवश्यकता है।

पृष्ठभूमि

बच्चों के भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सहज, स्वाभाविक और सार्थक बनाने के संदर्भ में परिवार, परिवेश, शिक्षक और शाला की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। परिवेश से प्राप्त भाषायी व्यवहार और प्रिंट से बच्चे स्वयं ही भाषा को अर्जित कर लेते

**एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली 110016

हैं। किसी भी परिवार में माता-पिता बच्चों को भाषा सिखाने की न तो घंटी लगाते हैं और न ही उसके लिए कोई प्रयास करते हैं। बच्चे स्वयं ही बोली जा रही भाषा के आधार पर नियमों को गढ़ते हैं और भाषा का व्यवहार करते हैं। जैसे-जैसे परिवेश में भाषा का व्यवहार समृद्ध से समृद्धतर होता जाता है वैसे-वैसे बच्चे भी भाषायी नियमों में परिवर्तन अथवा विस्तार करते चलते हैं और भाषा का समृद्धतर प्रयोग करते हैं। इसका निहितार्थ यही है कि भाषा अर्जित करने के लिए बच्चों को समृद्ध भाषायी परिवेश देना बेहद ज़रूरी है।

हम यह भी जानते हैं कि बच्चे शाला आने से पहले ही लगभग 5000 हज़ार शब्दों की संपदा के मालिक होते हैं। वे अपने जीवन की विभिन्न स्थितियों को साधने के लिए भाषा के विभिन्न रूपों का प्रयोग भी बखूबी करते हैं। अपने छोटे भाई-बहन या अपने दोस्त से कोई चीज़ माँगते समय उनके शब्दों का चयन और अनुतान एक खास तरह का होता है जबकि अपने माता-पिता या शिक्षक से किसी चीज़ की इच्छा ज़ाहिर करते समय उनके शब्दों का चयन और अनुतान दूसरी तरह का होता है। इतना ही नहीं भाषा अर्जित करने की प्रक्रिया में वे अनेक बार भाषायी नियमों का अतिसामान्यीकरण भी करते हैं, जैसे– *कुत्ते ने भौंका।/नीरा को पुकरवाओ।/हम हमारे यहाँ जाएँगे।* आदि।

पहले उदाहरण में बच्चे ने *'उसने खाया।/उसने देखा।/उसने बताया।'* में प्रयुक्त नियम का अनुगमन और अनुप्रयोग करते हुए 'ने' परसर्ग के साथ पूर्णभूतकालिक क्रिया का प्रयोग किया है। बच्चे के द्वारा प्रयुक्त वाक्य में क्रिया अकर्मक है जबकि अन्य वाक्य (जिन वाक्यों का उसने अनुगमन किया है) सकर्मक क्रिया वाले हैं। दूसरे वाक्य में बच्चे ने *'वाओ'* पैटर्न या भाषायी संरचना का अनुगमन किया है, जैसे– *बुलवाओ, लिखवाओ, पढ़वाओ* आदि। लेकिन जैसे-जैसे बच्चे भाषा सुनने-बोलने की प्रक्रियाओं से गुज़रते हैं, वैसे-वैसे वे स्वत: ही उसमें परिमार्जन भी कर लेते हैं। यह संपूर्ण प्रक्रिया इतनी सहजता से होती है कि इसकी सचेतनता का अहसास ही नहीं होता। इसी तरह बच्चे विभिन्न संदर्भों में भाषा का सार्थक प्रयोग करते हैं जिनसे उनकी भाषायी पूँजी का अनुभव होता है। उदाहरण के लिए एक चार साल का बच्चा जब अपनी छोटी बहन से उसके रंग माँगने के लिए यह कहता है– *'दीदी, क्या मैं यह ले लूँ?'* और *'आपके पास तो और भी रंग हैं न!'* तो उसकी भाषायी संपदा का अनुभव होता है।

पहले वाक्य का विश्लेषण करें तो कहा जा सकता है कि बच्चा प्रश्नसूचक वाक्य की संरचना से परिचित है और उसका प्रयोग करना जानता है। सही संबोधन से भी परिचित है। काल का प्रयोग भी बखूबी करता है। दूसरे वाक्य में सर्वनाम 'आपके', निपात 'तो', 'भी' और विस्यमयादिबोधक शब्दों का प्रयोग करने की कुशलता झलकती है। ये सभी उदाहरण यह बताते हैं कि बच्चों के वाक्य भले ही सरल लगते हों या उनमें किसी प्रकार की कोई त्रुटि नज़र आती हो लेकिन वे किसी-न-किसी भाषायी नियमों पर आधारित अवश्य हैं। वे अपने परिवेशगत भाषा में प्रयुक्त नियमों को 'पकड़ते' हैं और उनके

आधार पर अपनी भाषा 'गढ़ते' हैं। बच्चों की भाषा में नियमबद्ध व्यवस्था प्रतिध्वनित होती है। तीन-चार वर्ष की उम्र में ही भाषा के इन जटिल नियमों को 'पकड़' पाना और उसका प्रयोग कर पाना बच्चे की सीखने की अपार क्षमता का परिचायक है। क्या हम बच्चों की इस क्षमता को और अधिक बढ़ाने के लिए कुछ ठोस कार्य कर रहे हैं?

सवाल यह भी उठता है कि बच्चे भाषा के इन नियमों को 'पकड़ते' कैसे हैं? इस संबंध में मुख्यत: दो प्रकार की विचारधारा प्रचलित है। एक विचारधारा के अनुसार बच्चे 'अनुकरण' से ही भाषा सीखते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि बच्चे ने अपने परिवेश में जो सुना, उसका अनुकरण किया और उसे ही बोल दिया। क्या आपने-हमने ऐसा कभी देखा-सुना है? नहीं! अगर ऐसा होता तो बच्चे केवल उतने ही वाक्य और उसी तरह के वाक्य बोलते जितने और जैसे वाक्य वे सुनते हैं। क्या बच्चे ऐसा करते हैं? नहीं!

दूसरी विचारधारा के अनुसार हम सभी में भाषा सीखने की अंतर्जात क्षमता होती है। हम अपने परिवेश में जिस प्रकार की भाषा सुनते हैं, उसमें अंतर्निहित नियमों को आत्मसात करते हैं, अपने नियम गढ़ते हैं और उन नियमों के आधार पर भाषा का विविधस्वरूपी और सृजनात्मक प्रयोग करते हैं। इस रूप में बच्चों की भाषा जटिल और सृजनात्मक होती है। जटिल इस लिहाज़ से कि वाक्यों में जटिल नियमों का पालन होता है और सृजनात्मक इसलिए कि वे हर बार संदर्भ के अनुसार, स्थिति की माँग के अनुसार भाषा को गढ़ते हैं। भाषा को 'गढ़ना' ही उसकी सृजनात्मकता है। क्या हम बच्चों की भाषायी सृजनात्मकता को संरक्षित और संवर्द्धित कर रहे हैं?

भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्यों की पड़ताल और शिक्षक-शिक्षा

प्राथमिक स्तर पर भाषा सीखने-सिखाने का एक सर्वोपरि उद्देश्य है – विभिन्न परिस्थितियों में भाषा के सार्थक प्रयोग करने की क्षमता का विकास। इस एक उद्देश्य के अनेक आयाम हैं। एक आयाम भाषा के मौखिक रूप से जुड़ता है तो दूसरा आयाम भाषा के लिखित रूप से जुड़ता है। एक अन्य आयाम भाषा-प्रयोग में शब्दों और वाक्यों के सही चयन से जुड़ता है तो दूसरा अन्य आयाम अनुतान, बलाघात, सुर आदि से जुड़ता है जो कथ्य को सही अर्थ प्रदान करते हैं। अनुतान ज़रा-सा बिगड़ा नहीं कि अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। एक अन्य आयाम भाषा और विचार के संबंधों को उद्घाटित करता है कि जिन विचारों को संप्रेषित किया जाना है, उनके अनुरूप भाषा का प्रयोग किया जाए।

महज़ अनौपचारिक बातचीत की भाषा और किसी विषय पर गंभीर चिंतन की भाषा में अंतर होना लाज़मी है। एक और महत्वपूर्ण आयाम है– श्रोता या पाठक! जब हम बातचीत करते हैं तो किसी श्रोता का होना स्वाभाविक है और जब हम लिखते हैं तो उसे पढ़ने वाला या 'पाठक' होना भी स्वाभाविक है। इस श्रोता और पाठक की पृष्ठभूमि भी मायने रखती है। हम श्रोता और पाठक के स्तरानुसार ही भाषा का प्रयोग करते हैं ताकि 'बात' समझ में आ जाए या 'कथ्य' संप्रेषित हो जाए। आत्मविश्वास के साथ

अपनी बात कहना (मौखिक और लिखित रूप से) और दूसरों के द्वारा कही जा रही बात को सही-सही समझना (सुनकर और पढ़कर)– यही भाषा-शिक्षण का मूल है, शेष उद्देश्य इसी मूल के इर्द-गिर्द घूमते हैं। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित प्रारंभिक स्तर के पाठ्यक्रम में भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों को एक नज़र देखते चलते हैं–

- स्कूली शिक्षा पूरी होने तक विद्यार्थी का भाषा-बोध और साहित्य-बोध इस सीमा तक विकसित हो जाए कि उसमें किसी रचना के बारे में स्वतंत्र राय बनाने का आत्मविश्वास पैदा हो सके।
- विद्यार्थी कुशल पाठक, लेखक, श्रोता व विश्लेषक बन सकें।
- वे औपचारिक चर्चाओं व वाद-विवाद में बेझिझक होकर बोल सकें।
- वे अपने विचारों और भावनाओं को स्पष्ट, व्यवस्थित और असरदार ढंग से अभिव्यक्त कर सकें।
- पढ़ना, सुनना, लिखना, बोलना– इन चारों प्रक्रियाओं में विद्यार्थी अपने पूर्वज्ञान की सहायता से अर्थ की रचना कर पाएँ और कही गई बात के निहितार्थ को भी पकड़ पाएँ।
- वे दो बातों के बीच के अंत–संबंध को समझ सकें तथा अपने द्वारा कही या लिखी गई बात की तर्क से पुष्टि कर सकें।
- भाषा व्यक्ति के निर्भीक व्यक्तित्व की रचना कर सके।
- (प्रारंभिक स्तर की कक्षाओं का पाठ्यक्रम, एन.सी.ई.आर.टी.,2006– 9-10)

इन उद्देश्यों में संदर्भ, विचार, अभिव्यक्ति और अभिव्यक्ति की प्रभावशीलता को महत्व देते हुए भाषा-शिक्षण को दिशा देने का सफ़ल प्रयास किया गया है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्वयं शिक्षक की तैयारी भी ज़रूरी है। बच्चों में भाषा-प्रयोग की कुशलता और क्षमता का भरपूर विकास करने के लिए यह ज़रूरी होगा कि विद्यार्थी-शिक्षक भी भाषा, भाषा के प्रकार्य, भाषा की संरचना, भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्य , भाषा-शिक्षण की शिक्षा शास्त्रीय समझ से बखूबी परिचित हों। इसके अभाव में हम बच्चों की भाषायी क्षमताओं का विकास करने में कोई ठोस और सार्थक कार्य नहीं कर सकेंगे। यह भी संभव है कि हम भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सही दिशा न देकर उसे बेहद यांत्रिक, निरर्थक और नीरस बना दें। अत: यह ज़रूरी है कि शिक्षकों के पास विषय की सैद्धांतिक अवधारणात्मक समझ और व्यावहारिक अनुभव हो जिससे वे बच्चों के भाषा-विकास के साथ न्याय कर सकें।

प्रारंभिक साक्षरता – समझ का संकट

प्रारंभिक साक्षरता को 'साक्षरता' और 'प्रौढ़ साक्षरता' के समकक्ष रखने या उसे इनका पर्याय मानने में प्रारंभिक साक्षरता के प्रति समझ का संकट नज़र आता है। प्रारंभिक साक्षरता अपेक्षाकृत एक नया क्षेत्र है जिस पर पिछले दस-बारह वर्षों से संवाद की स्थिति बन पाई है। जब कभी भी प्रारंभिक साक्षरता की चर्चा होती है तो उसे 'प्रौढ़ शिक्षा' ही मान लिया जाता है जो 15 से 35 साल की उम्र वाले व्यक्तियों के लिए है। लेकिन अब 15 साल से आगे

तक की अनौपचारिक शिक्षा को ही 'साक्षरता' के साथ जोड़कर देखा जाने लगा है। साथ ही जिसमें पढ़ना-लिखना और गणित का प्रकार्यात्मक ज्ञान कराया जाता है। 'साक्षरता' को भी केवल 'अक्षर ज्ञान' से जोड़कर ही देखा-समझा जाता है। प्रारंभिक साक्षरता के बारे में यह समझ वास्तव में समझ का संकट ही कही जा सकती है। स्थिति और गंभीर तब हो जाती है जब यह संकटदायी समझ हमारी कक्षाओं में अपने 'पैर पसारती' है। दरअसल, प्रारंभिक साक्षरता का संबंध शुरुआती वर्षों में बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने की प्रक्रियाओं से है कि बच्चे किस तरह पढ़ना-लिखना सीखते हैं, पढ़ना-लिखना सीखने में प्रिंट समृद्ध वातावरण किस प्रकार मदद करता है, बाल-साहित्य की क्या भूमिका रहती है आदि। लेकिन भाषाओं की कक्षाओं में प्रारंभिक साक्षरता या शुरुआती पढ़ना-लिखना को जिस तरह से समझा जाता है वह बेहद खतरनाक और हानि पहुँचाने वाला है। हानि केवल विद्यार्थी की नहीं होती, हानि तो शिक्षक की समझ, उसके समय, उसके श्रम, उसकी ऊर्जा और समस्त शिक्षा जगत की भी है। ऐसे कई उदाहरण हमारे आस-पास हमें मिल ही जाएँगे जो यह सिद्ध कर सकते हैं कि प्रारंभिक साक्षरता की समझ कितनी संकटपूर्ण है। आइए कुछ कठोर वास्तविकताओं से रू-ब-रू होते हैं -

दिल्ली के एक प्राथमिक विद्यालय में पहला दिन था! पहला दिन और पहली कक्षा! पहली कक्षा में बहुत सारे बच्चे हैं– अंजलि, परी, कावेरी, ज्योति, इकरा, ज़ीनत, सोनाक्षी, खुशी! खुशी हमारी कक्षा में भी थी और खुशी मेरे मन में भी थी। खुशी इस बात की भी थी कि मुझे उनके साथ रहने, उनके सीखने के तौर-तरीकों को जानने का मौका मिलेगा। मुझे तीन महीने उन्हें पढ़ाना था। लेकिन मेरा यह भ्रम एक ही दिन में टूट गया। पहले ही दिन के कुछ पलों में मुझे पता चल गया कि मैं नहीं बल्कि ये मुझे बहुत कुछ 'पढ़ाएँगे'! अगले दिन मैंने बच्चों से कहा, "बच्चो! हिंदी की किताब निकालिए।"

"अ से अनार वाली!"– अनेक बच्चों के स्वर गूँज उठे। 'अ से अनार वाली किताब?' मैं अचंभित थी! यह मेरे लिए पहला 'सबक' था।

"हाँ, हिंदी की किताब 'रिमझिम' निकालिए।"– मैंने जानबूझकर हिंदी की किताब का नाम दोहराया ताकि बच्चे उससे परिचित हो जाएँ अब उसमें वह पन्ना खोलने के लिए कहा, जिसमें कक्षा का दृश्य बना हुआ था। बच्चों से उस तस्वीर पर ढेर सारी बातचीत शुरू हुई। बच्चों ने पुस्तक वाली कक्षा को और अपनी कक्षा को ध्यान से देखना शुरू किया और चीज़ों के नाम बताते चले गए। मैं उन शब्दों को बोर्ड पर लिखती चली गई - मेज़, बस्ता, बोतल, दरवाज़ा, बच्चे, मैम, किताब, कॉपी, पेंसिल, ...। फिर एक-एक शब्द के नीचे अँगुली रखकर बच्चों से उन शब्दों को पढ़ने के लिए कहा। इकरा, पलक, प्राची शब्दों को अपेक्षाकृत जल्दी से पढ़ रहे थे। कुछ इस तरह – मेज़, बस्ता, बोतल....। लक्ष्मी, कशिश, खुशी, ज्योति शब्द के हिज्जे करते हुए पढ़ रहे थे – मे/ज/मेज़, ब/स/ता/बस्ता, बो/त/ल/बोतल। काजल, अंजलि शब्दों के अक्षर ही पहचान पा रही थीं, कुछ इस तरह– म/ज/मज/मेज़, ब/स/त/बसत/बसता। रहनुमा, कावेरी, परी, सोनाक्षी बोर्ड पर लिखे गए

शब्दों के केवल अक्षर ही पहचान पा रही थीं – ये म है/ ये ज, ये ब/ ये स/और त। अलीशा, जेसिका को वर्णों की बिलकुल भी पहचान नहीं थी। बहुत प्रोत्साहित करने के बाद भी वे कोई भी शब्द नहीं पढ़ पाईं। कक्षा में कुछ ऐसे भी बच्चे थे जो मन ही मन अनुमान लगाकर पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। खुशबू, स्नेहा शब्दों का पहला अक्षर देखतीं, उन्हें पहचानने की कोशिश करतीं और अनुमान से शब्द पढ़ देतीं, जैसे– 'मेज़' का 'म' पहचान लिया और बोल दिया 'मेज'। लेकिन असल बात थी – पढ़ने की कोशिश करना जो सभी ने की।

मैंने सभी बच्चों से कहा, "अपनी हिंदी की कॉपी निकालिए और उसमें अपनी क्लास की तस्वीर बनाइए।" "आ से अनार वाली?" – इस बार यह परी की नहीं बल्कि कावेरी की आवाज़ थी। यह मेरा दूसरा सबक था। मुझे कक्षा एक में उनके नाम का चार्ट लगाना था ताकि बच्चे अपना नाम पहचान सकें, पढ़ सकें साथ ही अपने दोस्तों के भी। मैंने उनसे कहा कि "तुम सब के नाम मैं खुद लिखूँगी ताकि आप जान सकें कि मुझे आपके नाम याद हुए हैं कि नहीं।" मैं बोल-बोलकर उनके नाम लिखने लगी – कावेरी, काजल, कशिश, कविता... और मैं यहीं रुक गई। फिर मैंने बच्चों से पूछा कि इन सभी नामों में क्या खास बात है? अच्छा, सभी के नाम का पहला अक्षर देखिए! कुछ पता चला क्या? "सभी में 'क' आया है।" – यह इकरा की आवाज़ थी। "बहुत अच्छा, शाबाश!" – मैंने उसकी पीठ थपथपाई। क्या और शब्द बता सकते हैं जिसमें 'क' की आवाज़ हो? कबूतर, कार, कपड़े, काजल (मैऽऽम, वो आँखों में लगाने वाला काजल), काला, कान, करेला, ककड़ी, कंचे.... मैं बोर्ड पर लिखती चली गई। बच्चों को अपनी कॉपी में सभी शब्द लिखने और उसमें 'क' पर घेरा लगाने के लिए कहा। सब बच्चे मशगूल हो गए। लक्षिता अपनी कॉपी दिखाने लाई। उसने 'कबूतर' शब्द का सिर्फ़ 'क' लिखा हुआ था। मैंने कहा, "लक्षिता, 'कबूतर' लिखकर घेरा लगाओ।" "लिखा तो है!" – लक्षिता ने 'क' की ओर अँगुली से संकेत किया।

"यह तो 'क' लिखा है।"

लक्षिता ने 'क' पर अँगुली रखी और ज़ोर देकर कहा, "नहीं, ये 'क' कबूतर लिखा तो है! देखो तो।" यह मेरा तीसरा सबक था।

सबक एक, दो और तीन हमारी भाषाओं की कक्षाओं का चित्र उद्घाटित करते हैं। आप यह कह सकते हैं कि 'अ' से अनार वाली किताब और 'आ' से अनार वाली कॉपी कहने में क्या खतरा हो सकता है। खतरा है और बड़ा भारी खतरा है। पहला खतरा तो यह कि बच्चे इस भ्रम को 'पाल लेंगे' कि 'क' से केवल 'कबूतर' ही होता है, काजल, कार, कविता, केला नहीं। बच्चे के लिए 'क' की आकृति 'कबूतर' का अर्थ देती है, 'क' से बनने वाले बाकी शब्दों का क्या होगा? दूसरा खतरा यह कि बच्चे हिंदी की किताब और कॉपी को केवल 'अ'/'आ' से ही जोड़कर देख रहे हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि हिंदी भाषा की कक्षा में केवल 'वर्णमाला' ही रटाई जा रही है और वह भी क्रम में जबकि इस स्तर पर बच्चों को वर्णमाला के क्रम से क्या लेना-देना? वे तो अपनी भाषा में अपनी बात कहना जानते हैं। वे किसी

एक ध्वनि का प्रयोग नहीं करते बल्कि संवाद करते हैं। तीसरा खतरा यह कि बच्चे भाषा की कक्षा में निरर्थक कवायद कर रहे हैं, क्योंकि 'अ/आ/क/प/च' आदि का कोई अर्थ नहीं है। ये वर्ण बच्चों को न तो कोई अर्थ ही दे पाते हैं और न ही सीखने का आनंद। चौथा खतरा यह कि बच्चे वर्णमाला की दुनिया में उलझकर सार्थक तरीके से न तो पढ़ना-लिखना सीख पाएँगे और न ही भाषा सीखने की उनकी जन्मजात क्षमता का लाभ उठाते हुए उनकी भाषा को समृद्ध से समृद्धतर बनाया जा सकता है। पाँचवाँ खतरा यह है कि हम प्राथमिक स्तर पर, व कक्षा एक और दो में भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्यों से भटक जाएँगे इस स्तर पर भाषा सीखने-सिखाने का उद्देश्य है – 'बच्चों में अपने अनुभव और विचार बताने की इच्छा और उत्सुकता जगाना, बच्चों में दूसरों की बात सुनने में रुचि और धैर्य पैदा करना, उनसे सुनी बात पर टिप्पणी दे पाना, सुनी और पढ़ी कहानियों और कविताओं से अपने अनुभव संसार को जोड़ पाना और उसके बारे में बात करना, चित्रकारी को स्वयं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना' आदि। (प्रारंभिक स्तर की कक्षाओं का पाठ्यक्रम एन.सी.ई.आर.टी., 2006, पृष्ठ 13-14) यदि इन उद्देश्यों को गौर से देखें तो यह स्पष्ट होता है कि इनमें भाषा-प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है, मात्र वर्णमाला सिखाने पर नहीं! इतना ही नहीं पहली कक्षा में बच्चों की हिंदी, अंग्रेज़ी की कॉपियों में 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अ–' और A B C D E F G H... आदि 'भरा' पड़ा हुआ था। फिर बिना मात्रा वाले शब्द और फिर मात्रा वाले शब्द! उसमें भी दो अक्षर वाले शब्द, फिर तीन अक्षर वाले शब्द .... और भी न जाने क्या-क्या लिखा हुआ था। इस पर भी यह और ये सारे शब्द बच्चों ने स्वयं नहीं बताए, बस शिक्षक द्वारा ब्लैकबोर्ड पर लिखे हुए को नकल कर उतार भर लिया। कक्षा में पाठ्यपुस्तक से इतर कोई पुस्तक अगर मिल भी जाए तो यह तय कर पाना कठिन होगा कि एक शिक्षक इसका किसी प्रकार कोई सार्थक प्रयोग कर भी पाएगा।

पुस्तकालय अलमारी या संदूक में बंद है या फिर किताबों के फटने के डर से उन्हें बच्चों की पहुँच से दूर रखा जाता है। किताबें उपदेशात्मकता से 'अटी' पड़ी हुई हैं। उनमें न तो बच्चों की दुनिया की झलक मिलती है और न ही बच्चों जैसी जीवंतता, सब कुछ एकदम 'बेस्वाद', नीरस। एक दिलचस्प बात और कि इस तरह की कक्षाएँ आपको लगभग हर राज्य में मिल जाएँगी जहाँ किसी भी भाषा को सिखाने का अर्थ है – उस भाषा की वर्णमाला को रटा भर देना, उसे लिखा भर देना। जबकि भाषा इन सबसे कहीं ऊपर है। उसमें अर्थ है, संदर्भ है, संदर्भगत प्रयोग हैं और स्व-अभिव्यक्ति है।

भारतीय कक्षाओं के भाषा शिक्षण संबंधी प्रचलित शिक्षा शास्त्र को और अधिक गौर से देखने तथा गहराई से विश्लेषण करने पर और अधिक खतरे नज़र आएँगे। इन सबमें किसका दोष है? शिक्षक का? शिक्षक-शिक्षा का? शिक्षा के प्रति गंभीरता और संवदेनशीलता के अभाव का? शिक्षा-जगत का? शिक्षा-व्यवस्था का? दोष किसी का भी हो लेकिन 'भुगतना' बच्चों को ही पड़ता है। हम उनके जीवन के साथ खिलवाड़ तो कर नहीं सकते। बच्चों की भाषायी पूँजी की उपेक्षा कर हम उसे वर्णमाला

और अक्षरों की नीरस एवं निरर्थक दुनिया के साथ 'बाँध' देते हैं और बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ करने लगते हैं। यह तो 'अन्याय' है। शिक्षकों की शिक्षा पर अभी बहुत अधिक ध्यान देने और उसकी पाठ्यचर्या को सुगठित करने, व्यवस्थित करने की आवश्यकता है।

शिक्षक-शिक्षा और प्रारंभिक साक्षरता की शिक्षा शास्त्रीय समझ

पहले की चर्चा में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि बच्चों की भाषायी क्षमताओं के विकास के दायित्व से शिक्षक को बरी नहीं किया जा सकता। वे जिस तरह से अपनी भाषा की कक्षायी प्रक्रियाओं को आयोजित करते हैं उनके आधार पर बच्चों का भाषायी विकास निर्भर करता है। यदि शिक्षक परंपरागत विचारधारा के अनुसार पढ़ने को केवल वर्णमाला और अक्षर ज्ञान तक सीमित रखते हैं तो वे बच्चों के पढ़ना सीखने में बाधा उत्पन्न करते हैं। अत: यह ज़रूरी है कि शिक्षकों को प्रारंभिक साक्षरता और उसके विभिन्न पहलुओं की सैद्धांतिक एवं अवधारणात्मक समझ होनी चाहिए। इसके साथ ही उन्हें प्रारंभिक क्षेत्र में होने वाले विभिन्न शोधों की अद्यतन जानकारी होनी चाहिए। तभी वे बच्चों के पढ़ने-लिखने की प्रक्रियाओं को सार्थक और सहज बना सकेंगे। आगे की चर्चा में पढ़ना-लिखना की सही, स्पष्ट अवधारणात्मक समझ को विस्तार दिया गया है जिसे किसी भी शिक्षक-शिक्षा पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

'पढ़ना' की अवधारणात्मक समझ

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रारंभिक साक्षरता का संबंध शुरुआती वर्षों में बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने से है। पढ़ना-लिखना के संबंध में हमारी परंपरागत समझ यह 'समझाती' है कि पढ़ना और लिखना दो अलग कौशल हैं जिनका विकास एक के बाद एक होता है। 'पढ़ना' एक ग्राहयात्मक कौशल है। क्योंकि हम पढ़ने के बाद अर्थ ग्रहण करते हैं ठीक उसी तरह जिस प्रकार बच्चे सुनने के बाद अर्थ ग्रहण करते हैं। लिखना कौशल अभिव्यक्तात्मक या उत्पादी कौशल है जिसमें बच्चे कुछ अभिव्यक्त या उत्पादन करते हैं ठीक उसी तरह जिस तरह हम बोलते समय कुछ अभिव्यक्त करते हैं। परंपरागत समझ यह भी 'समझाती' है कि सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना इसी क्रमबद्ध तरीके से सीखे जाते हैं। भाषा-कौशलों के बारे में यह 'समझ' बेहद खतरनाक है, क्योंकि इस तरह हम सभी कौशलों को एक-दूसरे से अलग करके देखते हैं और एक के सीख जाने के बाद दूसरे को सीखने की बात करते हैं। जबकि हम जानते हैं कि जब बातचीत होती है तो सुनने और बोलने की प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं। इसी तरह जब हमारे परिवेश में प्रिंट उपलब्ध होता है, चाहे किसी भी रूप में, तो बच्चे स्वत: ही पढ़ने-लिखने की अवधारणाओं से परिचित होने लगते हैं।

जब बच्चों के सामने पेन लेकर कुछ लिखते हैं तो बच्चे इस व्यवहार का अवलोकन करते हैं और वे भी पेन लेकर कागज़ पर कुछ उकेरने का प्रयास करते हैं। इतना ही नहीं जब कोई बड़ा कोई अखबार या पत्रिका लेकर पढ़ता है तो बच्चे भी अखबार या पत्रिका को उसी अंदाज़ में पकड़ने की कोशिश करते हैं, भले ही वे उसे उलटा पकड़ें – फिर मुँह से कुछ

ध्वनियों का प्रस्फुटन होता है, जैसे कुछ पढ़ रहे हों, वे पढ़ने का अभिनय करते हैं। ये सभी व्यवहार बच्चे शाला आने से पूर्व ही प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार पढ़ना-लिखना साथ-साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं, दोनों में गहन संबंध है।

सामान्यत: 'पढ़ना' का संबंध अक्षर-ज्ञान से जोड़ा जाता है। बच्चे ने वर्णमाला के अक्षर पहचान लिए तो समझ लीजिए कि उसे पढ़ना आ गया। इसी मान्यता के कारण हमारी भाषा-कक्षाओं में अक्षर-ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है। लेकिन यह 'समझ' सही नहीं है। जॉन होल्ट एक जगह लिखते हैं कि 'लिज़ा किंडरगार्टन गई जहाँ अध्यापिका ने उसको पढ़ना सिखाने की कोशिश नहीं की ना ही उसे उस ओर धकेला! वहाँ बहुत सारी किताबें, साइन, चिट्ठियाँ और ऐसी ही कई उपयोगी सामग्री थीं .... उसने अपने आपको पढ़ना सिखा दिया! किसी को पता नहीं कि आखिर उसने यह किया कैसे? दरअसल, यह एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में हम सभी कम जानते हैं। कई हज़ार बच्चे प्रत्येक वर्ष पढ़ना सीख जाते हैं। बेहतर होगा कि हम बात को जानने की कोशिश करें कि ऐसे कितने बच्चे हैं। इन्होंने पढ़ना कैसे सीख लिया!' यह उद्धरण इस ओर संकेत करता है कि जिस तरह बच्चे बोलना सीख जाते हैं वैसे ही वे पढ़ना भी सीख जाते हैं। ज़रूरत है तो बस समृद्ध भाषिक परिवेश की।

पढ़ना के संदर्भ में 'अब यह माना जाता है कि पढ़ने की प्रक्रिया में अंकित– सूचना की बानगी ग्रहण करना महत्वपूर्ण है। हमारी आँखें जब अक्षरों, विराम-चिह्नों, शब्दों और शब्दों के बीच छोड़ी गई जगहों का मुआयना करती हैं तो हमारा मस्तिष्क इस ग्राफ़िक (हाथ से लिखी गई या छपी हुई) सामग्री की संपूर्ण मात्रा पर ध्यान नहीं देता। यदि ऐसा होता तो छोटी-छोटी सूचनाओं पर गौर करने की मस्तिष्क की क्षमता पर अत्यधिक बोझ पड़ता और अधिकांश लोग जिस रफ्तार से पढ़ते हैं वह असंभव हो जाती। पारंपरिक विधियों से पढ़ना सीखने वाले कई बच्चों के साथ यही होता है। वे हर शब्द को अक्षरों की छोटी इकाइयों में तोड़ते हैं और इस तरह शब्दों का अर्थ ग्रहण करने की मस्तिष्क की क्षमता पर बहुत ज़्यादा बोझ डाल देते हैं।

एक प्रवीण पाठक की आँखें ऐसा बोझ नहीं पड़ने देतीं क्योंकि वे पन्ने पर अंकित ग्राफ़िक सूचनाओं के एक सीमित, चुने हुए अंश से जूझती हैं। प्रवीण पाठक किसी अक्षर के पूरे आकार पर ध्यान नहीं देता है, न ही वह एक शब्द के सारे अक्षरों या एक वाक्य के सारे शब्दों पर ध्यान देता है। पढ़ते समय उसकी आँखें अंकित सामग्री के छोटे-से अंश पर गौर करती हैं। शेष भाग वह समझदार अनुमान के ज़रिए ग्रहण करता है। अनुमान का आधार होते हैं– 'अक्षरों की आकृतियाँ, शब्द , उनके अर्थ, उनके संयोजन और आम दुनिया से पाठक का पहले से मौजूद परिचय। पढ़ना एक एकाकी प्रक्रिया नहीं है, उसमें कई प्रक्रियाएँ शामिल हैं। पढ़ते वक्त भाषा के उपयोग से जुड़े तीन तरह के संकेत हमारे ध्यान में आते हैं – अक्षरों की आकृतियाँ और उनसे जुड़ी ध्वनियाँ, वाक्य विन्यास (जैसे विशेषण का संज्ञा से पहले आना) और शब्दों के अर्थ। भाषा का इस्तेमाल करते-करते हम इन तीनों तरह के संकेतों से जुड़ी

कुछ अपेक्षाओं के आदी हो जाते हैं। ये अपेक्षाएँ ही अनुमान या भविष्यवाणी के आधार पर छपी हुई सामग्री का वह अंश पूरा करने में हमारी मदद करती हैं, जिसे हमारी तेज़ रफ्तार आँखों ने छोड़ दिया था।' (कृष्ण कुमार, 2009) इस प्रकार यह बात साफ़ हो जाती है कि एक कुशल पाठक के लिए 'डिकोडिंग' यानी शब्दों को पहचानना और उसे उच्चरित करना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है तो छपी सामग्री से निरंतर संवाद करते हुए अर्थ ग्रहण करना।

दरअसल पढ़ने की प्रक्रिया में अनेक कुशलताएँ शामिल हैं, जैसे – अक्षर-ध्वनि संबंध बना पाना, भाषा विशेष की संरचनागत विशेषताओं को पकड़ पाना, संदर्भ और अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर मुद्रित सामग्री से अर्थ ग्रहण करना। पढ़ने की इस पूरी प्रक्रिया में जो सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, वह अर्थ है। इस प्रकार पढ़ना है– समझना। दरअसल पढ़ने की प्रक्रिया तभी से शुरू हो जाती है जब बच्चे अपने परिवेश में उपलब्ध प्रिंट या लिखित को पहचानते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि चित्रों को पढ़ना यानी उनका वर्णन करना भी एक तरह से पढ़ना ही है, पढ़ने की तैयारी नहीं। इस चर्चा से यह तो तय है कि पढ़ना केवल लिपि-चिह्नों को पहचानने और उन्हें उच्चरित करने की प्रक्रिया नहीं है।

पढ़ने की प्रक्रिया के बारे में अब तक जो शोध हुए हैं उनके आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पढ़ना एक रचनात्मक प्रक्रिया है, क्योंकि पढ़ने वाला पाठ्य-सामग्री को समझने के लिए अपने पूर्वज्ञान, पूर्व अनुभव का प्रयोग करता है। एक ही पाठ्य-सामग्री अलग-अलग बच्चों के लिए अलग-अलग अर्थ संप्रेषित कर सकती है। इतना ही नहीं अलग-अलग समाज-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए पाठ्य-सामग्री से संघर्ष करने के तरीके भी अलग हो सकते हैं।

पढ़ना एक प्रक्रिया है जिसका प्रमुख उद्देश्य लिखित सामग्री का अर्थ जानना है। पढ़ने की इस प्रक्रिया में पाठक और लिखित सामग्री के बीच एक संबंध बनता है जो उन्हें अर्थ निर्माण की सृजनात्मक क्रियाओं से जोड़ता है। इस बात का भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि पढ़ना-लिखना साथ-साथ चलने वाली प्रक्रियाएँ हैं। शिक्षक की भूमिका इस रूप में तय की जा सकती है कि वे इन प्रक्रियाओं को सहज और बच्चों की ज़रूरतों के अनुरूप बनाएँ।

पढ़ना सीखने की प्रक्रिया

- कौतुहल से किताब उलटना-पलटना (Exploration)
  - बच्चे किताब को उलटी-सीधी तरह से पकड़ने की कोशिश करते हैं और पन्ने पलटने की क्रिया से जूझते हैं।
  - उलटने-पलटने की इस क्रिया से बच्चे किताब को सीधा पकड़ कर खोलने का सही तरीका धीरे-धीरे समझने लगते हैं।
- चित्रों को पढ़ना (Picture Reading)
  - बच्चे चित्रों को ध्यान से देखते हैं और उनमें दर्शायी गयी चीज़ों के बारे में अपने ढंग से वर्णन करते हैं। यह वर्णन एक शब्द में हो सकता है और छोटे-छोटे वाक्यों में भी।
  - वे चित्रों या चित्रों की शृंखला से स्वयं एक कहानी भी निर्मित कर लेते हैं।

- पढ़ने का अभिनय (Pretend Reading)
  - ‘पढ़ने के अभिनय’ से अभिप्राय बच्चे द्वारा लिखित सामग्री को देखकर ऐसा अभिनय करना है जैसे– वे वास्तव में पढ़ ही रहे हों।
  - आमतौर पर बच्चों के द्वारा बोले गए वाक्य और लिखित सामग्री में कोई संबंध नहीं होता। कभी-कभी बोली गई बात भी स्पष्ट नहीं होती पर यह पता चलता है कि पढ़ने को लेकर बच्चों की एक समझ बनने लगी है। अक्सर छोटे बच्चे किसी पुस्तक में प्रिंट पर अँगुली फिराते हुए कहानी गढ़ते चले जाते हैं। कभी-कभी अख़बार को उलटा पकड़ कर कुछ बोलते हैं, पढ़ने का अभिनय करते हैं और बड़ों की नकल करते हैं।
- अनुमान से पढ़ना (Prediction)
  (i) चित्रों द्वारा
  (ii) पूर्व अनुभव के आधार पर
  (iii) संदर्भ द्वारा
  (iv) लिखित भाषा द्वारा
  - बच्चे पढ़ने के लिए चित्र, अपने पूर्व अनुभव, संदर्भ और लिखित सामग्री का इस्तेमाल करते हैं।
  - लिखित सामग्री पढ़ते समय वे इन संकेतों की मदद से अर्थपूर्ण कहानी, कविता आदि गढ़ने लगते हैं।
  - पढ़ते समय अनुमान लगाते हुए बच्चों की अक्षर-ध्वनि संकेतों की समझ गहरी होने लगती है। इससे उन्हें लिखित सामग्री का अर्थ समझने में सहायता मिलती है।
- लिखित पाठ्य-सामग्री को स्वतंत्र रूप से पढ़ना (More Reliance on Text)
  - चित्रों को पढ़ते, अनुमान लगाते और पढ़ने का अभिनय करते हुए बच्चे धीरे-धीरे लिखित सामग्री को पढ़ने में इतने सक्षम होने लगते हैं कि वे अब चित्रों से ज़्यादा संदर्भ और लिखित सामग्री पर आश्रित होकर अर्थ का निर्माण करने लगते हैं।

शिक्षक-शिक्षा की पाठ्यचर्या में पढ़ना और पढ़ने की प्रक्रिया के इन विभिन्न बिंदुओं की समीक्षात्मक समझ का होना भी ज़रूरी है ताकि वे अपनी कक्षा की ज़रूरतों के अनुसार उसमें संशोधन और परिमार्जन कर सकें।

‘लिखना’ सीखने की अवधारणात्मक समझ

यदि बच्चों को प्रिंट समृद्ध परिवेश मिले तो वे लिखने की प्रक्रिया की ओर स्वत: ही अग्रसर होने लगते हैं। जैसे बड़े पेन से लिखते हैं, वैसे ही बच्चे उसी तरह कागज़ पर लकीरें उकेरने लगते हैं। इन लकीरों के माध्यम से वे कुछ कहना चाहते हैं, कुछ अभिव्यक्त करना चाहते हैं। इस तरह लिखना अभिव्यक्ति है – अपनी बात की, अपने विचार की, अपनी राय की, अपनी शंकाओं, जिज्ञासाओं की, अपने मन की कल्पनाओं को पंख देने की। लेकिन भारतीय कक्षाओं का स्वरूप ‘लिखना’ को पढ़ने की तरह ही केवल वर्णमाला और अक्षरों के लेखन तक ही सीमित मानता है। लिखने के नाम पर भारतीय कक्षाओं में जो हो रहा है उससे बच्चे लिखने से जी चुराने लगे हैं। कक्षा एक और दो के बच्चों की कॉपियों को गौर

से देखें तो ज्ञात होगा कि उसमें पंक्ति दर पंक्ति और पन्ना दर पन्ना केवल अक्षर ही लिखे होते हैं। बिना मात्रा वाले और फिर मात्रा वाले शब्दों को लिखने, ब्लैकबोर्ड से देखकर उतारने का निरर्थक अभ्यास प्रारंभ होता है।

लिखने में बच्चों की स्व-अभिव्यक्ति के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। आगे की कक्षाओं में लिखने का मामला केवल प्रश्न-उत्तर तक ही सिमटकर रह जाता है। बच्चे अपने मन की बात लिखने का, जो वे सोचते हैं, उसके बारे में लिखित अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास नहीं कर पाते। एक बड़ी उम्र तक सवालों के जवाब, निबंध, पत्र आदि रटकर ही परीक्षा में लिखे जाते हैं। कक्षा में लिखने के लिए ब्लैकबोर्ड है, घर में लिखने के लिए गाइड, कुंजी है ही; बस, लेखन हो गया। 'लिखना' सीखने में प्रिंट का विशेष महत्व है। अत: शिक्षकों को इस ओर भी गंभीरता से सोचना होगा।

बच्चों के लिखना सीखने की प्रक्रिया के कई पड़ाव हैं और उनमें एक प्रकार की विकासात्मक प्रक्रिया नज़र आती है। इनकी स्पष्ट और सही समझ शिक्षकों को वह आधार प्रदान कर सकेगी जिसके सहारे वे भाषा-कक्षाओं में प्रभावी शिक्षण-पद्धतियों का प्रयोग कर सकेंगे और बच्चों को समृद्ध परिवेश एवं लिखना सीखने के अवसर उपलब्ध करा सकेंगे। शिक्षकों को लिखने की विकासात्मक प्रकिया के इन चरणों की स्पष्ट समझ होना आवश्यक है–

हम यह समझते हैं कि पढ़ना-लिखना विद्यालयों मे ही शुरू होता है, लेकिन ऐसा नहीं है। हमारे घरों में और आस-पास लिखित/प्रिंट सामग्री मौजूद है, बस ज़रूरत है तो ध्यान देने की। घर के बाहर लिखा नंबर, घर की दीवारों पर बने जो चित्र, कैलेंडर, स्टोव पर लिखा कंपनी का नाम, बर्तनों पर उकेरा गया घर के मुख्य सदस्य का नाम, बाज़ू पर नाम के टैटू चिह्न, अखबार का पन्ना, सामान खरीदने पर मिली पर्चियाँ आदि। लिखना एक तरह की बातचीत है जिसमें मन की बात को लकीरों, अक्षरों या शब्दों के द्वारा कहा जाता है। हर बच्चे को अपनी बात को आड़ी-तिरछी लकीरों में उतार पाने मे जो आनंद मिलता है, वह शिक्षक द्वारा बोर्ड पर लिखे हुए काम की नकल करने से ज़्यादा संतोषजनक होता है। बच्चों की आड़ी-तिरछी लकीरें पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया का एक बेहद ज़रूरी हिस्सा हैं। अगर हम इन आड़ी तिरछी लकीरों को नहीं सराहेंगे तो बच्चे पढ़ने-लिखने की यांत्रिकता में ही उलझकर रह जाएँगे। बच्चों की इन पहली लकीरों को कक्षा में बिना रोक-टोक स्वीकारना और उस पर बातचीत करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये लकीरें बच्चों के लेखन के वे पहले महत्वपूर्ण पड़ाव हैं, जहाँ बच्चा पढ़ने-लिखने को सार्थकता से देख रहा है। वह यह समझ रहा है कि मन की बात को लिखा जा सकता है और लिखी गई बात को पढ़ा जा सकता है।

(लिखने की शुरुआत– एक संवाद
एन.सी.ई.आर.टी, 2013)

चरण 1 – आड़ी-तिरछी रेखाएँ

- अपने मन से इच्छानुसार आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचना, कागज़ पर निशान बनाना।
- कागज़ पर निशान गहरे होते चले जाते हैं।
- अपने आस-पास उपलब्ध प्रिंट/चीज़ों/वस्तुओं को ध्यान से देखना।

चरण 2 – प्रतीकात्मक चित्र

- आड़ी-तिरछी रेखाओं में आकृतियाँ उभरने लगती हैं।
- एक बंद आकृति बनाने के लिए रेखाओं को जोड़ने की शुरुआत।
- कागज़ पर सीमाओं की समझ का प्रदर्शन।

चरण 3 – स्व-वर्तनी लेखन की शुरुआत

- चित्रों में अधिक विस्तार और स्थान संबंधी जागरूकता नज़र आती है।
- ध्वनि-संकेत का संबंध।
- वर्तनी-लेखन की शुरुआत।

चरण 4 – स्व-वर्तनी से पारपंरिक लेखन की ओर.....

- ध्वनि-संकेत के बीच संबंधों को दृढ़ करने के लिए वर्तनी-लेखन प्रक्रिया की शुरुआत।
- लेखन में नए शब्दों का इस्तेमाल।

अर्थपूर्ण संदर्भ में लिखित सामग्री से बढ़ते संपर्क स्ववर्तनी को भी पारंपरिक लेखन की ओर ले जाते हैं इसलिए लिखने के साथ-साथ पढ़ने के अवसर बनाए रखना भी अत्यंत आवश्यक है। साथ ही पढ़ने-लिखने की समझ को एक स्वाभाविक, विकासात्मक नज़रिए से बढ़ावा देना भी ज़रूरी है।

इस संदर्भ में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका इस रूप में है कि वे –

- चित्रों में उभर रहे विस्तार पर ध्यान दें एवं बच्चों से चर्चा करें।
- आड़ी-तिरछी लकीरों के प्रारूप को शब्दों में बदलता हुए देखें।
- वर्तनी-लेखन लिखने की प्रक्रिया का एक अहम हिस्सा है। इसमें गलतियाँ न ढूँढ़ें।
- बच्चों के लेखन को पढ़कर अवलोकन करें और विचार करें कि बच्चों की मदद कैसे करनी है। ध्वनि-संकेत के बीच संबंधों को दृढ़ करने के लिए बाल-साहित्य और सार्थक प्रिंट का इस्तेमाल करें।
- चुनौतीपूर्ण ध्वनि-संकेतों पर कहानी/कविता के माध्यम से बच्चों का ध्यान केंद्रित करें।
- बच्चों को बाल-साहित्य एवं पढ़ने-लिखने की गतिविधियों से जोड़े रखें ताकि वे नए शब्दों एवं भाषा के अलग-अलग पहलुओं से परिचित हो सकें।

पढ़ना-लिखना सीखने में बाल-साहित्य, बाल-पत्रिका और प्रिंट की भूमिका

बाल-साहित्य बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने में मदद करता है। इसका सार्थक इस्तेमाल किया जाना चाहिए। बाल-साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसमें बच्चों को पढ़ने में मज़ा आए और वे उससे स्वयं को जोड़ पाएँ। वास्तव में यह तय कर पाना कठिन है कि बच्चों को अंतत– क्या पसंद आएगा लेकिन फिर भी उसकी एक समझ तो बनाई ही जा सकती है। बच्चे रंगों से आकर्षित होते हैं, ऐसी बातें जिनमें कुछ अनोखा-सा घटता है, वह भी बच्चों को पसंद

आता है। पशु-पक्षी, परिवार, दादा-दादी, नाना-नानी, पेड़-पौधे, हवा आदि प्रकृति के विभिन्न तत्व बच्चों को प्रिय होते हैं। अत: इस प्रकार के बाल-साहित्य को कक्षा में जगह दी जा सकती है। बाल-साहित्य में अनिवार्यत: मूल्य सिखाए जाएँ, ज़रूरी नहीं है। यदि किसी कविता या कहानी में सहजता से कोई मूल्य आ जाता है, तो अच्छा है। हर जगह मूल्यों को ढूँढना ठीक नहीं है। बच्चे आनंद लेते हुए सीखें। ऐसा बाल-साहित्य अच्छा माना जा सकता है –

- जिसमें चित्रों के माध्यम से बहुत कुछ कहने की संभावना हो।
- जिसकी घटनाओं, शब्दों, वाक्यों में दोहराव हो।
- जिसकी भाषा सरल और बच्चों के अपने भाषा संसार से मेल खाती हो।
- जिसमें आस-पास की चीज़ों से जुड़ने का मौका मिले।
- जिसमें बच्चों को कल्पना करने के भरपूर अवसर मिलें।
- जो बच्चों को स्वयं कविता, कहानी या कोई अन्य प्रकार का सृजन करने की प्रेरणा देता हो।
- जो बच्चों के अनुभव संसार को समृद्ध करे।
- कविताएँ ऐसी हों जिनमें लय हो और बच्चे उन्हें गाने का आनंद ले सकें।
- जिसके अक्षरों का आकार इतना बड़ा हो कि बच्चे उसे आसानी से पढ़ सकें।
- जिसका शीर्षक बच्चों को रोचक लगे और किताब को उठाकर पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करे।

बाल-पत्रिका भी बच्चों के पढ़ना-लिखना सीखने में मदद करती है। बाल पत्रिका के माध्यम से बच्चों को एक निश्चित अंतराल पर पढ़ने की सामग्री उपलब्ध होती है। ये पत्रिकाएँ बच्चों को स्वतंत्र पाठक बनने में भी मदद करती हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के प्रारंभिक शिक्षा विभाग द्वारा छोटे बच्चों के लिए त्रैमासिक बाल-पत्रिका 'फिरकी बच्चों की' का प्रकाशन करता है। बच्चों के लिए प्रकाशित किसी भी सामग्री में चित्रों की विशेष भूमिका होती है। 'फिरकी बच्चों की' के संदर्भ में यह बात और भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह पत्रिका विशेष रूप से उन बच्चों के लिए है जो पढ़ने-लिखने के शुरुआती दौर में हैं।

लिखित सामग्री से जुड़ने में, उसको सराहने/समझने में, उसका आनंद लेने में चित्रों की भूमिका उल्लेखनीय है। इसमें इस प्रकार के चित्रों को स्थान दिया जाता है जो लिखी गई बात को छवियों में ढालने के साथ-साथ पाठकों के अनुभव संसार से जुड़ते हैं। चित्र बच्चों के लिए दर्शायी जा रही घटना और गतिविधियों को उनके पूरे विस्तार के साथ सामने लाते हैं। इसमें चित्र ऐसे हैं जिनसे बच्चों को कल्पना करने, सोचने और लिखित सामग्री से आगे बढ़कर कुछ समझने का संकेत मिलता है। लिखित सामग्री और चित्रों में ऐसा सामंजस्य है कि वे एक दूसरे के पूरक बनते हैं यानी चित्रों के सहारे कहानी/कविता के बारे में बात करने के ढेरों अवसर उपलब्ध होते हैं। बाल-पत्रिका में न केवल बड़ों की बल्कि बच्चों की भी रचनाओं को शामिल किया जाता है ताकि उन्हें एक प्रभावी लेखक बनने में मदद मिल सके।

कक्षाओं में प्रिंट समृद्ध परिवेश के नाम पर कक्षाओं में केवल चार्ट, पोस्टर्स, सूक्तियाँ आदि ही देखने के लिए मिलती हैं। इन चार्टस पर भी कई बार केवल वर्णमाला ही देखने को मिलती है या फिर फलों, सब्ज़ियों, रंगों या यातायात के साधनों के चित्र और प्रत्येक चित्र के नीचे उनके नाम देखने को मिलते हैं। अनेक बार चित्र, चार्ट, पोस्टर्स को लगाना कक्षा-कक्ष को सजाने के उद्देश्य से किया जाता है। इतना ही नहीं ये चित्र, चार्ट, पोस्टर्स बच्चों की पहुँच से बहुत दूर लगाए जाते हैं ताकि बच्चे इन्हें खराब न कर सकें, इन्हें फ़ाड़कर बर्बाद न कर सकें। लेकिन प्रिंट की अवधारणा में बच्चे बार-बार उस प्रिंट को देखते हैं, उससे रू-ब-रू होते हैं और उन्हें पढ़ने-लिखने की सार्थक सामग्री प्राप्त होती है।

एक बार पहली कक्षा में 'पतंग' पर बातचीत हो रही थी, पंद्रह अगस्त के अगले दिन। उस दिन बच्चों ने पतंग भी उड़ाई थी इसलिए पतंग को बिंदु बनाकर बातचीत का सिलसिला प्रारंभ हुआ। फिर बच्चों ने अपनी-अपनी कॉपी में रंग-बिरंगी पतंगें बनाईं। उनके नीचे 'पतंग' नाम भी लिखा। लक्ष्मी को 'पतंग' शब्द लिखना नहीं आ रहा था। वह पीछे मुड़ी ओर एक चार्ट को बार-बार देखने लगी। फिर अपनी कॉपी में कुछ लिखने लगी। पता चला कि लक्ष्मी कक्षा में 'सर-सर-सर उड़ी पतंग' के चार्ट में से 'पतंग' शब्द को देखकर लिख रही थी। यह पढ़ना-लिखना सीखने में प्रिंट की सकारात्मक भूमिका का उदाहरण है। ऐसे चार्ट, पोस्टर्स कक्षा में होने चाहिए जो सार्थक हों और पढ़ाए जा रहे पाठों की विषय-वस्तु से मेल खाते हों। इसलिए नियमित अंतराल पर प्रिंट को अवश्य बदला जाना चाहिए।

पूरी चर्चा के उपरांत कहा जा सकता है कि बच्चों में पठन संस्कृति का विकास करने की आवश्यकता को बहुत शिद्दत से महसूस किया जा रहा है। यह ऐसा तब से नहीं है जब से 'असर' की रिपोर्ट आई है, बल्कि बच्चों के पढ़ने-लिखने के तरीकों के बारे में इन दिनों संवाद निरंतर बढ़ा है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा– 2005 में भी इस बिंदु पर काफ़ी बल दिया गया है कि बच्चों के पढ़ना सीखने के बारे में विचार करने और उसके बारे में बेहतर समझ विकसित करने की ज़रूरत है ताकि बच्चों की पठन क्षमताओं का विकास किया जा सके। इस समझ का लाभ हर बच्चे को मिले, इसके लिए यह ज़रूरी है कि शिक्षकों में यह समझ बने। इस संदर्भ में एम.एच.आर.डी. निरंतर प्रयासरत् है कि सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में इस दिशा में कार्य किया जाए।

एन.सी.ई.आर.टी. का प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम पिछले सात-आठ सालों से इस दिशा में पूर्ण गंभीरता से कार्य कर रहा है कि सेवारत शिक्षकों और सेवा-पूर्व शिक्षकों में पढ़ने-लिखने की प्रक्रियाओं के बारे में स्पष्टता विकसित हो सके। राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के शिक्षा-अधिकारियों, शिक्षक-प्रशिक्षकों और शिक्षकों को कार्य करते हुए यह ज्ञात हुआ कि अभी इस क्षेत्र में न तो संवाद की स्थिति है और न ही समझ की। प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम यानी शुरुआती पढ़ना-लिखना स्वयं में एक उभरता क्षेत्र है जिसकी शिक्षा शास्त्रीय विषय-वस्तु और उससे जुड़े विभिन्न पहलुओं को शिक्षक-शिक्षा संबंधी पाठ्यचर्या में उचित स्थान और पर्याप्त समय देने की आवश्यकता है। शुरुआती पढ़ना-लिखना

अपने आप में ऐसी अनेक संभावनाओं को समेटे हुए है जिन्हें शिक्षकों से साझा करने की ज़रूरत है, जैसे – शुरुआती पढ़ना-लिखना, समझ के साथ पढ़ना, प्रारंभिक कक्षाओं में पढ़ने और लिखने के विकासात्मक चरणों की समझ, अर्थपूर्ण पढ़ने-लिखने के अवसरों का प्रावधान, पढ़ने-लिखने में प्रिंट समृद्ध माहौल की भूमिका, पढ़ने-लिखने में बाल-साहित्य और बाल-पत्रिकाओं की भूमिका और उनका अर्थपूर्ण उपयोग, शुरुआती पढ़ने-लिखने का आकलन, साक्षरता सीखने में बच्चों के अनुभवों का संसाधनों के रूप में उपयोग आदि। शिक्षकों को ऐसे शिक्षा शास्त्र की समझ से लैस करना ज़रूरी है कि जो समझ/अर्थग्रहण, मौखिक एवं लिखित भाषा के संबंध, रोज़मर्रा के जीवन में साक्षरता का उपयोग और प्रिंट को संबोधित करता है। अत: यह बेहद ज़रूरी है कि प्रारंभिक साक्षरता के विभिन्न पक्षों को शिक्षक-शिक्षा पाठ्यचर्या में शामिल किया जाना चाहिए।

संदर्भ

एन.सी.ई.आर.टी. 2006. *प्रारंभिक स्तर की कक्षाओं का पाठ्यक्रम,* नयी दिल्ली।

_____. 2008. *पढ़ने की समझ,* नयी दिल्ली।

_____. 2009. *भारतीय भाषाओं का शिक्षण,* आधार पत्र, नयी दिल्ली।

_____. 2013. *लिखने की शुरुआत–* एक संवाद, नयी दिल्ली।

कुमार, कृष्ण. 2009. *बच्चे की भाषा और अध्यापक,* एन.बी.टी., नयी दिल्ली।